ओऽम् त्र्यम्बकम् यजामहे सुगंधिम् पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिवबन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

डेली हिन्दी मिलाप

शुक्रवार, 30 जुलाई, 2010

मत-विभाजन की माँग का मकसद

लोकसभा-अध्यक्ष मीरा कुमार ने विपक्ष की उन सभी नोटिसों को निरस्त कर दिया है, जो अलग-अलग दलों द्वारा कार्य-स्थगन प्रस्ताव के जरिये महँगाई मुद्दे पर बहस कराने और उसके बाद सदन में मत-विभाजन कराने की माँग के साथ अध्यक्ष को दी गई थीं। इन सभी नोटिसों पर अपनी व्यवस्था देते हुए मीरा कुमार ने इस प्रस्ताव के तहत बहस कराने की बात तो मंजूर की है, लेकिन वे विपक्ष की मत-विभाजन की माँग स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है कि नियमानुसार ऐसा तभी किया जा सकता है, जब सरकार संवैधानिक व्यवस्था स्थापित करने में असफल सिद्ध होती है। नोटिसों को निरस्त करते हुए उन्होंने 1971 में तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष जी.एस. ढिल्लों द्वारा दिये गये एक निर्णय का हवाला भी दिया है। मीरा कुमार ने इस व्यवस्था के साथ यह भी स्पष्ट किया है कि महँगाई का मुद्दा अतिसंवेदनशील है, क्योंकि इसका संबंध देश के आम आदमी की जिन्दगी से खास ताल्लुक रखता है, अत: इस मसले पर किसी अन्य नियम के तहत गंभीर चर्चा अवश्य होनी चाहिए।

अध्यक्ष की इस व्यवस्था का जवाब सदन में विपक्षी दलों ने हंगामे के साथ दिया। उनकी प्रतिबद्धता इस मुद्दे पर सदन तब तक न चलने देने की है, जब तक मत-विभाजन सहित कार्य-स्थगन प्रस्ताव को मंजूरी नहीं मिलती। मुख्य विपक्षी दल भाजपा का कहना है कि वह सदन में कोई विधायी कामकाज तब तक नहीं होने देगी जब तक उसका प्रस्ताव मंजूर नहीं कर लिया जाता। इसके विपरीत वामदलों ने सदन में धरना देने की बात तो कही है, लेकिन विधायी कामकाज में किसी तरह का अवरोध उत्पन्न करने की बात नामंजूर कर दी है। कुल मिलाकर संकेत इसी बात के प्रसारित हो रहे हैं कि विपक्ष अपनी माँग के चलते सदन की कार्यवाही तब तक न चलने देने पर आमादा है, जब तक उसका कार्य-स्थगन प्रस्ताव नियम 193 के तहत मंजूर नहीं हो जाता। हैरत की बात यह है कि महँगाई मुद्दे पर बहस के साथ मत-विभाजन पर जोर देते हुए लोकसभा में भाजपा विपक्ष की नेता सुषमा स्वराज ने अपने भाषण में कहा है कि उनका मकसद महँगाई मुद्दे पर असंवेदनशील बनी सरकार की निन्दा भर करना है, वे मत-विभाजन के जरिये संप्रग सरकार को अपदस्थ करने के पक्ष में नहीं हैं।

सुषमा स्वराज से यह पूछा जा सकता है कि अगर वे सिर्फ इस मुद्दे पर सरकार की निन्दा भर करना चाहती हैं और सरकार गिराने का उनका कोई इरादा नहीं है, तो वे मत-विभाजन के साथ अपने कार्य-स्थगन प्रस्ताव की मंजूरी पर ज़िद क्यों बनाये हुए हैं? सरकारी पक्ष अगर सदन में इस मुद्दे पर बहस कराने को तैयार है, तो क्या वे इसके जरिये अपनी निन्दा करने की अति उत्कट महत्वाकांक्षा की तुष्टि नहीं कर सकती हैं? वे सरकार गिराने का मकसद लेकर अगर आगे नहीं बढ़ रही हैं, तो फिर मत-विभाजन की निरर्थकता अपने-आप सिद्ध हो जाती है। मत-विभाजन की माँग को किसी भी हालत में औपचारिक नहीं माना जा सकता। उसका प्राथमिक उद्देश्य सरकार को अल्पमत में साबित करना ही होता है और इस क्रम में सरकार का पतन भी हो सकता है। हालाँकि बसपा, सपा और राजद आज भाजपा को यह भरोसा दे रहे हैं कि इस मुद्दे पर वे भाजपा के साथ हैं, लेकिन पिछले बजट-सत्र में इन्होंने जिस तरह पलटीमारी थी, उससे इनकी विश्वसनीयता आज भी संदिग्ध बनी हुई है। इन सभी स्थितियों-परिस्थितियों को समझते हुए भाजपा की अगुआई में अगर विपक्ष मत-विभाजन की अपनी माँग पर अड़ा हुआ है, तो उसका एक यही मकसद हो सकता है कि वह अपनी एकजुटता की उस ताकत को, जो बजट-सत्र के दौरान छिन्न-भिन्न हो गई थी, प्रदर्शित करना चाहता है। हालाँकि उसे इस बात का बखूबी अहसास है कि संप्रग सरकार बहुमत में है। संसद को हंगामे के हवाले करने का क्या यह मकसद नहीं हो सकता कि सत्ता-पक्ष और विपक्ष लोकतंत्र की इस सर्वोच्च संस्था को कीचड़ में घसीट रहे हैं?

ब्रिटिश प्रधानमंत्री की खरी-खरी

हाल में हुए 'विकीलीक्स' खुलासे के संदर्भ में ब्रिटिश प्रधानमंत्री डेविड कैमरुन का कहना है कि आतंकवाद के मुद्दे पर पाकिस्तान का दोहरा नजरिया 'बर्दाश्त' के काबिल नहीं है। दोहरा नजरिया को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि उसको इस बात की इजाजत नहीं दी जा सकती कि वह वैश्विक स्तर पर आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में साझीदार भी बना रहे और कतिपय देशों के खिलाफ उसकी एजेंसियाँ आतंकी गतिविधियों को प्रोत्साहित भी करती रहें। अपने दो दिवसीय दौरे पर भारत आये ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने पाकिस्तान को स्पष्ट चेतावनी दी है कि भारत, अफगानिस्तान अथवा दुनिया के किसी भी इलाके में उसकी इस दोहरी भूमिका को विश्व-समुदाय कत्तई बर्दाश्त करने के पक्ष में नहीं है। उनके अनुसार हाल ही में इंटरनेट की एक वेबसाइट पर लीक हुए दस्तावेज़ उसकी इस दोहरी भूमिका के स्पष्ट प्रमाण हैं और उजागर हुए तथ्यों के संदर्भ में पाकिस्तान के पास अपने बचाव में कहने के लिए कोई तर्क नहीं है। कैमरुन के इस वक्तव्य के बाबत पाकिस्तान ने भी काफी कड़ी प्रतिक्रिया दी है। उसके प्रवक्ता ने कहा है कि पाकिस्तान ने आतंकवाद के खिलाफ अपनी लड़ाई में किसी भी देश के मुकाबले अपनी बड़ी और अग्रणी भूमिका निभाई है, अत: उसे ऐसी किसी नसीहत की ज़रूरत नहीं है। उसने ब्रिटिश प्रधानमंत्री को सलाह दी है कि वे भारत से कहें कि वह इस मुद्दे पर वस्तुनिष्ठ दृटिकोण अपनाये। कैमरुन की टिप्पणी पर पाकिस्तान की झल्लाहट को समझा जा सकता है। अमेरिका और ब्रिटेन सहित सारी दुनिया को 'विकीलीक्स' खुलासे ने मजबूर कर दिया है कि वे पाकिस्तान और उसकी जमीन से संचालित आतंकवाद पर नये सिरे से सोचें। अब तक पाकिस्तान आतंकी गतिविधियों के लिए 'नान-स्टेट-एक्टर्स' को अकेले जिम्मेदार ठहराता आया है, लेकिन अब दुनिया के सामने साबित हो चुका है कि यह भी उसकी वैदेशिक कूटनीति का ही एक हिस्सा है।

सुवाक्य

जो आत्मायें ईश्वरीय सेवा में
सदा हाँ जी करती हैं,
उनके आगे सभी आत्मायें हाँ जी,
हाँ जी करेंगी।

इंटरनेशनल रुपये के दौर में भारत

भारत भी संयुक्त राज्य अमरीका, युनाइटेड किंगडम (ब्रिटेन), जापान और संयुक्त यूरोप की मुद्रा यूरो के एलीट पॉवर क्लब में शामिल हो गया, जब रुपये का एक सर्वकालिक प्रतीक चुन लिया गया। लेकिन आसमान में उड़ने का जज्बा देने वाली ये उपलब्धियां तब मुंह पर कालिख पोत देती हैं, जब ऑक्सफोर्ड और संयुक्त राष्ट्र संघ के एक साझा गरीबी अध्ययन शोध में भारत के आठ राज्यों को अब तक दुनिया के सबसे गरीब माने गए 26 अफ्रीकी देशों से भी ज्यादा गरीब पाया गया। क्या यह हमारी तमाम सुर्खियां बटोरने वाली उपलब्धियों के बीच मुंह पर रसीद किया गया करारा तमाचा नहीं है। जब एक ही देश में कुछ लोग इतने अमीर हों कि उन्हें इस बात का अंदाजा लगाने की जरूरत ही न हो कि खर्च कैसे किया जाए? और कुछ इतने गरीब हों कि उनके पास खर्च करने के लिए कुछ भी न हो तो ऐसा देश चाहे जितना ताकतवर हो, दुनिया की नजरों में सम्मान नहीं पाता बल्कि हंसी का पात्र बनता है।

रूडयार्ड किपलिंग ने सही ही कहा था, भारत विचित्रताओं का देश है। अब इसे ही लें। जुलाई 2010 का पहला पखवाड़ा काफी विचित्र सुर्खियों से भरा रहा। इसी पखवाड़े हम दुनिया के उन चुनिंदा मुल्कों में से एक बने, जिनकी अपनी मुद्राओं के अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक चिन्ह हैं। भारत भी संयुक्त राज्य अमरीका, युनाइटेड किंगडम (ब्रिटेन), जापान और संयुक्त यूरोप की मुद्रा यूरो के एलीट पॉवर क्लब में शामिल हो गया। जब रुपये का एक सर्वकालिक प्रतीक चुन लिया गया। इसी पखवाड़े भारत अंतरिक्ष में पांच उपग्रह प्रक्षेपित करके स्पेस पॉवर के मामले में अमरीका, रूस, यूरोपीय आर्थिक समुदाय की पांत में जा बैठा। इसी पखवाड़े एक और उपलब्धि भारत के गौरव किरीट का हिस्सा बनी।

लेकिन आसमान में उड़ने का जज्बा देने वाली ये तमाम उपलब्धियां तब मुंह पर कालिख पोत देती हैं, जब ऑक्सफोर्ड और संयुक्त राष्ट्र संघ के एक साझा गरीबी अध्ययन शोध में भारत के आठ राज्यों को अब तक दुनिया के सबसे गरीब माने गए 26 अफ्रीकी देशों से भी ज्यादा गरीब पाया गया। जिस देश की अर्थव्यवस्था को आज चीन के बाद सबसे तेज रफ्तार विकास दर का तमगा हासिल हो, जिस अर्थव्यवस्था को दुनिया का भविष्य तय करने वाला विकास इंजन निरुपित किया जा रहा हो, उस देश में बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश और झारखंड ऐसे राज्य हैं, जहां के निवासियों के मुकाबले सौमाल्या, घाना, सूडान और इरीट्रिया जैसे देशों के निवासी दोगुने ज्यादा रईस हैं। जरा सोचिये, अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में अफ्रीका के जिन उप-सहारन देशों के भुखमरी से पीड़ित लोगों को देखकर वितृष्णा होती है, उनसे भी गए-गुजरे करोड़ों लोग भारत की अपनी सरजमीं में रहते हैं। हमने जिन कुपोषित चेहरों को अफ्रीका का पर्याय मान लिया है, हमारे यहां उससे भी ज्यादा बुरी स्थिति है।

क्या यह हमारी तमाम सुर्खियां बटोरने वाली उपलब्धियों के बीच मुंह पर रसीद किया गया करारा तमाचा नहीं है। विचित्रताओं की भी कोई सीमा होती होगी। अगर यह हकीकत सामने न आती तो शायद इस पर यकीन नहीं होता। वैसे तो हमारे अपने देश में ही पिछले एक दशक से यह बहस का विचित्र मुद्दा बना हुआ है कि आखिर भारत मे कितने गरीब हैं? मजे की बात यह है कि इस संदर्भ में जितने मुंह उतनी बातें वाली कहावत बिल्कुल चरितार्थ होती है। सरकार का एक महकमा अगर गरीबी रेखा के नीचे गुजर-बसर करने वाले लोगों की तादाद 30 करोड़ बताता है, तो तरंत दूसरा महकमा 38-40 करोड़ गरीब होने का दावा करता है। भारत सरकार का योजना आयोग कोई और आंकड़ा देता है, तो सुरेश तेंदुलकर कमेटी 44 करोड़ के ऊपर आंकड़ा ले जाती है और अब जाकर संयुक्त राष्ट्र संघ तथा ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी के साझे शोध अध्ययन में माना गया है कि देश में 55 करोड़ से ज्यादा गरीब हैं।

जिस देश में सरकारी विभाग ये ही न तय कर पा रहे हों कि आखिर गरीब कुल हैं कितने? वह देश अपने गरीबों के साथ किस तरह का सलूक करता होगा, इसका अंदाजा लगाया ही जा सकता है। 70 के दशक में हम जॉन कैनेथ गॉलब्रेथ की जिस ट्रिपल डाउन थ्योरी को लेकर कैंपस बहस किया करते थे और प्रगतिशील छात्रों का बड़ा तबका यह कहकर विकास के उस सिद्धांत को खारिज कर देता था कि ब्रिटेन में उस सिद्धांत के जरिये अमीरी और गरीबी में बहुत बड़ी खाई पैदा हो गई है। इसलिए यह सिद्धांत भारत जैसे बहुलतावादी देश के लिए अर्थहीन है, लेकिन उदारवादी अर्थव्यवस्था और निर्यातोंमुखी विचार ने हमारी अर्थव्यवस्था को आज उसी जकड़बंदी में ले रखा है। वॉल स्ट्रीट जनरल ने सही ही लिखा है कि भारत में अमीर नहीं बढ़ रहे, अमीरी बढ़ रही है। यानी हमने विकास के जिस मॉडल को अपना रखा है, उसके चलते कुछ लोग बहुत ही अमीर होते जा रहे हैं और कुछ दूसरे लोग इतने गरीब हैं कि हम कल्पना ही नहीं कर सकते, न ही कर पाते हैं कि एक ही देश में दो देश कैसे साथ-साथ मौजूद हैं?

50 के दशक में कश्मीर की विशिष्ट हैसियत के विरुद्ध आमरण आंदोलन चलाने वाले डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का नारा था- एक देश में दो विधान, एक देश में दो निशान नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे। आज अगर डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी जिंदा होते तो वे अपनी आंखों से देखते कि एक देश में दो तरह के लोग किस तरह साथ-साथ रहने को अभिशप्त हैं। एक तबका इतना अमीर है कि उसे अपनी अमीरी का अंदाजा ही नहीं है। जो रूस की रानी की तरह सोचता है कि लोग भुखमरी का रोना क्यों रो रहे हैं? अगर रोटी नहीं है, तो ये लोग केक क्यों नहीं खा रहे? दूसरा तबका इतना गरीब है कि उसके पास सोचने के लिए कुछ बचा ही नहीं है। न भविष्य, न सपना। वह अपनी जिंदगी से न उत्साहित है न हतोत्साहित। बस जीये जा रहा है।

सवाल है कि आखिर यह विचित्रता क्यों है? भारत इतना विरोधाभासों का देश क्यों हैं? एक देश जहां दुनिया की टॉप-20 अमीर देशों की सूची वाले 5 लोग रहते हों, यानी दुनिया के कुल अमीरों का 25 फीसदी, उसी देश में आखिर इतनी बड़ी तादाद में भुखमरे और निरक्षर क्यों हैं? जो दुनिया के एक तिहाई गरीब और भुखमरे हैं। मल्टी डायमेंशनल पॉवर्टी इंडेक्स के तहत जब हिंदुस्तान के आठ प्रांतों के गरीब लोगों का आंकलन किया गया, तो ये अफ्रीका के उप-सहारन गरीब लोगों की रेटिंग 0.43 के मुकाबले 0.32 साबित हुए। ऐसा नहीं है कि गरीबी के पहले के मानदंडों में भारतीय गरीब दिखते ही न रहे हों। दरअसल, असली बात यह है कि हाल के सालों में मीडिया ने देश और दुनिया की नजरों में एक ऐसे उभरते चमकते भारत की छवि गढ़ी है, जिसके सामने भारत की वास्तविकता किसी बुरे सपने की तरह लगने लगी थी। जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ और ऑक्सफोर्ड के ताजा अध्ययन ने यह साबित किया है कि हकीकत यही है कि हमारा सच हाहाकारी है।

भला कौन देश होगा जिसे अपनी बढ़ती हुई ताकत आकर्षित नहीं करती। भारत अगर धीरे-धीरे सुपर पॉवर बन रहा है, चाहे आर्थिक क्षेत्र की बात हो या वैज्ञानिक तो यह प्रगति सबको प्रभावित करती है। लेकिन जब एक ही देश में कुछ लोग इतने अमीर हों कि उन्हें इस बात का अंदाजा लगाने की जरूरत ही न हो कि खर्च कैसे किया जाए? और कुछ इतने गरीब हों कि उनके पास खर्च करने के लिए कुछ भी न हो तो ऐसा देश चाहे जितना ताकतवर हो, दुनिया की नजरों में सम्मान नहीं पाता बल्कि हंसी का पात्र बनता है। हमारे प्रधानमंत्री दुनिया के जाने-माने अर्थशास्त्री हैं और उनके प्रमुख सलाहकार तथा योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह आहलुवालिया को भी दुनिया की अर्थव्यवस्था का गहन जानकार माना जाता है। अगर इन दो-दो विशेषज्ञों के बावजूद भारत विचित्रताओं का देश बना रहा, तो हम सुपर पॉवर कभी नहीं बन पाएंगे।

- लोकमित्र

लाभ के साथ-साथ नुकसान भी कम नहीं हैं नरेगा के

पिछड़े राज्यों में नरेगा का गहरा प्रभाव पड़ा है। बिहार, झारखण्ड एवं उड़ीसा के पिछड़े जिलों में श्रमिकों की दिहाड़ी 50-60 रुपये थी। नरेगा के कारण इसमें सहज ही वृद्धि हुई है। संदेश जा रहा है कि उचित वेतन 100 रुपये का है। फलस्वरूप इन राज्यों से श्रमिक कम पलायन कर रहे हैं, लेकिन नरेगा के तीन नकारात्क बिन्दु सामने आये हैं। पहला यह कि इसके अन्तर्गत गांवों में ही विकास कार्य कराये जाते हैं। दूसरा बिन्दु है- किसानों एवं उद्यमियों के लिए श्रम की कृत्रिम कमी उत्पन्न हो रही है। निरीह श्रमिक 100 दिन काम करके आज प्रसन्न हैं, परन्तु वे भूल रहे हैं कि आने वाले समय में उन्हें शेष 265 दिन बेकार बैठना पड़ेगा। तीसरा बिन्दु-पलायन में रुकावट का है। अर्थात उत्पादक स्थान पर श्रम की कमी एवं अनुत्पादक स्थान पर श्रम की बर्बादी की जा रही है। इन समस्याओं के बावजूद नरेगा की मूल सोच सही दिशा में है। हमें ऐसी नीति बनानी चाहिए कि श्रम के वेतन में वृद्धि हो और श्रम का सदुपयोग भी हो। इस दृष्टि से नरेगा में सुधार की जरूरत है।

यूपीए सरकार की प्रमुख योजना नरेगा के सार्थक परिणाम सामने आ रहे हैं। श्रमिकों को रोजगार अपने घर के पास उपलब्ध हो रहा है। परियोजना में 100 दिन के रोजगार की व्यवस्था है, परन्तु योजना आयोग के मूल्यांकन के अनुसार औसतन केवल 14 दिन का रोजगार उपलब्ध हो पा रहा है। इस आंकड़े से उद्वेलित नहीं होना चाहिए। खबर है कि दक्षिण के कई राज्यों में श्रमिक 100 रुपये में नरेगा में काम करने को राजी नहीं हैं, क्योंकि क्षेत्र में सामान्य वेतन 200 रुपये है। नरेगा में 200 के स्थान पर 100 रुपये की ही कमायी होती है। तुलना में पिछड़े राज्यों में नरेगा का गहरा प्रभाव पड़ा है। बिहार, झारखण्ड एवं उड़ीसा के पिछड़े जिलों में श्रमिकों की दिहाड़ी 50-60 रुपये थी। नरेगा के कारण इसमें सहज ही वृद्धि हुई है। संदेश जा रहा है कि उचित वेतन 100 रुपये का है। फलस्वरूप इन राज्यों से श्रमिक कम पलायन कर रहे हैं। पंजाब जैसे क्षेत्र में श्रमिकों की कमी उत्पन्न हो रही है, और सम्पूर्ण देश में वेतन वृद्धि हो रही है। यह नरेगा का महान सार्थक पक्ष है।

लेकिन नरेगा के तीन नकारात्क बिन्दु सामने आये हैं। पहला यह कि इसके अन्तर्गत गांवों में ही विकास कार्य कराये जाते हैं। वास्तव में गांव में उत्पादक कार्यों की संभावनाएं सीमित होती हैं। जैसे यदि दो साल के बच्चे की थाली में अनेक प्रकार की मिठाई, फल, नमकीन और तरह-तरह के पकवान परोस दिये जायें, तो वह खायेगा कम और अधिकतर माल को इधर-उधर बिखरा कर बर्बाद कर देगा। कारण यह कि उसकी भोजन करने की क्षमता सीमित है। इसी प्रकार गांव में तालाब एक बार ही खोदा जा सकता है। बार-बार खोदने का तो केवल स्वांग ही रचा जा सकता है। सड़क पर मिट्टी डालने का काम भी ज्यादा हो जाये तो सड़क कमजोर हो जाती है। अतएव नरेगा में व्यर्थ के कार्य कराये जाते हैं। जैसे- नदी के किनारे चेकडैम बनाये जाते हैं। इससे हमारी अर्थशक्ति अनावश्यक कार्यों में क्षय हो रही है।

नरेगा की कमी का दूसरा बिन्दु है- किसानों एवं उद्यमियों के लिए श्रम की कृत्रिम कमी उत्पन्न हो रही है। एग्री-बिजनेस एण्ड मैनेजमेंट वेबसाइट पर बताया गया है कि श्रम की कमी के कारण किसानों द्वारा रासायनिक कीटनाशकों एवं मशीनों का उपयोग ज्यादा किया जायेगा। यानी किसान द्वारा निराई, कटाई, छटाई के जो रोजगार श्रम बाजार में सहज ही उत्पन्न किये जा रहे थे, वे कार्य अब मशीनों द्वारा कराये जाएंगे। दीर्घकाल में यह श्रमिकों के लिए हानिप्रद होगा, चूंकि उसकी श्रमशक्ति की मांग ही नहीं रह जायेगी। नरेगा के अन्तर्गत काम करवाकर सरकार श्रमिक से अपने पैर पर कुल्हाड़ी चलवा रही है। निरीह श्रमिक 100 दिन काम करके आज प्रसन्न हैं, परन्तु वे भूल रहे हैं कि आने वाले समय में उन्हें शेष 265 दिन बेकार बैठना पड़ेगा। नरेगा की कृपा से हम गरीबी के कुएं से निकल कर मशीनीकरण की खाई में गिरते जा रहे हैं। श्रमिक की दिहाड़ी में तत्काल वृद्धि हो रही है, परन्तु दीर्घकाल में श्रम की उपयोगिता समाप्त हो रही है।

तीसरी समस्या पलायन में रुकावट की है। तकनीकी बदलाव के साथ श्रम का पलायन होना अनिवार्य है। किसी समय हमारे देश के प्रमुख शहर जैसे दिल्ली, कानपुर, पटना एवं कोलकाता नदियों और समुद्र के किनारे बसाये जाते थे। यातायात का प्रमुख साधन जलमार्ग का होता था। आज रेल और वायुयान के विकास से हिसार, जयपुर और हैदराबाद जैसे महानगर स्थापित हो गए हैं। जलमार्ग आज अप्रासंगिक हो गये हैं। इन शहरों की ओर श्रम का पलायन होना स्वाभाविक है। पटना, गया और भागलपुर की बढ़ती जनसंख्या को घर में रोजगार उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है, चूँकि नये कारखाने दूसरे स्थानों पर लग रहे हैं। इन शहरों के श्रमिकों के लिए कोलकाता, पंजाब और हरियाणा में पलायन करना ही श्रेयस्कर है। जिस प्रकार मंडी से सेब और टमाटर उस शहर को भेजे जाते हैं, जहाँ मांग अधिक होती है। उसी प्रकार श्रम को भी उसी स्थान पर भेजा जाना चाहिए, जहाँ मांग अधिक है। गयाना, फीजी, दक्षिण अफ्रीका में भारत से बड़ी संख्या में श्रमिक इसी कारण पलायन कर गये थे। नरेगा द्वारा इस पलायन को जबरन रोका जा रहा है, अर्थात उत्पादक स्थान पर श्रम की कमी एवं अनुत्पादक स्थान पर श्रम की बर्बादी की जा रही है।

नरेगा के इस नकारात्मक पक्ष के प्रति सरकार उदासीन है। कारण यह दिखाया है कि सत्तारूढ़ पार्टी का पहला उद्देश्य सत्ता पर काबिज रहने का होता है। इसलिये सरकार मतदाता को उलझाए रखना चाहती है, ताकि वह हमेशा सरकार के चारों ओर चक्कर लगाता रहे। दरअसल, सरकार की अंदरूनी मंशा गरीब को गरीबी से उबारने की नहीं है, बल्कि उसे गरीब बनाये रखने की होती है। जैसे यदि सरकार लाभार्थी को सीधे 10,000 रुपये प्रति वर्ष दे दे तो लाभार्थी को सरपंच के चक्कर नहीं काटने होंगे, बल्कि वह इस रकम से सरपंच की धांधली को उजागर करेगा। अत: सरकार ने युक्ति निकाली है कि नगद के स्थान पर रोजगार दो, ताकि लाभार्थी सरकारी तंत्र पर परावलंबित हो जाये। गरीब को परावलम्बी बनाने का नरेगा नुस्खा है। सरकार इसमें कामयाब हो रही है।

इन समस्याओं के बावजूद नरेगा की मूल सोच सही दिशा में है। श्रम को ऊँचा वेतन मिलना ही चाहिए, परन्तु इस उद्देश्य को नरेगा से सही मायने में हासिल नहीं किया जा रहा है। हमें ऐसे उपाय निकालने होंगे कि श्रम का वेतन भी बढ़े और उसकी उत्पादकता भी बनी रहे। पहला उपाय है कि हर परिवार को नरेगा के अन्तर्गत दी जाने वाली दस हजार रुपये की रकम को सीधे वितरित कर दिया जाये। इस रकम को प्राप्त करने के लिए 2 घंटे फर्जी काम करने के नाटक को समाप्त कर दिया जाये। इससे श्रमिक दूसरे उत्पादक कार्यों में लगे रहते हुए इस रकम को प्राप्त कर सकेंगे। इसे प्राप्त करने के लिए उसे निकम्मा नहीं बनना होगा। नरेगा में तेजी से व्याप्त होती अनियमितताएं और भ्रष्टाचार से भी देश को छुटकारा मिल जायेगा।

सुधार का दूसरा उपाय है कि सरकारी विभागों अथवा उनके ठेकेदारों द्वारा श्रमिक को किये गये पेमेंट को सरकार नरेगा के बजट से दे दे। पीडब्ल्यूडी को सड़क बनाने में जितने श्रमिकों का उपयोग करना हो, उतनी रकम नरेगा द्वारा पीडब्ल्यूडी को उपलब्ध करा दी जाये। इससे सरकारी विभागों एवं ठेकेदारों के लिए कार्यों को मशीनों के स्थान पर श्रमिकों से कराना लाभप्रद हो जायेगा, क्यूंकि मशीनों का पेमेंट उन्हें अपने बजट से करना होगा। इसी प्रकार निजी उद्योगों द्वारा उपयोग किये गये श्रम पर 50 रुपये प्रतिदिन की सब्सिडी दी जा सकती है। ऐसा करने से बाजार में सहज ही रोजगार उत्पन्न हो जायेंगे और नरेगा की जरूरत ही नहीं रह जायेगी। फिर भी यदि नरेगा को जारी रखना ही हो तो इसमें निजी भूमि के सुधार की छूट दे देनी चाहिए। किसान अपने खेत पर मेडबन्दी करे और वृक्ष लगाये तो नरेगा उसे मजदूरी दे। इससे यह रकम उत्पादक हो जायेगी और उद्योगों को हो रहे नुकसान की आंशिक भरपायी हो जायेगी। हमें ऐसी नीति बनानी चाहिए कि श्रम के वेतन में वृद्धि हो और श्रम का सदुपयोग भी हो। इस दृष्टि से नरेगा में सुधार की जरूरत है।

- डॉ. भरत झुनझुनवाला

बालक की प्रथम पाठशाला

कैसी विडम्बना है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों को अपने दादा-दादी/नाना-नानी का नाम तक मालूम नहीं। हैरानगी तो तब होती है, जब अभिभावक भी अपने-अपने सास-ससुर के नाम स्पष्ट करने में असमर्थ दिखाई देते हैं। आखिर कैसे संस्कारों द्वारा हम राष्ट्र के कर्णधारों का पालन-पोषण कर रहे हैं? अगर माता-पिता ही अपने बड़े-बुजुर्गों को विस्मृत करने लगें तो नौनिहालों से वृद्धजनों का सम्मान करने की अपेक्षा हम कैसे कर सकते हैं? बालक की प्रथम पाठशाला 'परिवार' ही है। पारिवारिक सदस्यों के खान-पान, रहन-सहन, हाव-भाव, गुणों व संस्कारों से नौनिहालों का शारीरिक, सामाजिक व मानसिक विकास प्रभावित होता है। अभिभावक इस ओर सूक्ष्मता से ध्यान दें।

- योगेश्वर (हैदराबाद)

रिश्वतखोरी तो जीवन का कलंक है

इन विदेशियों की नकल कर 'वेलेंटाइन डे' मनाने में तो हम सीमाएं लांघ जाते हैं, लेकिन 'आनेस्टी-डे' के मामले में हम बात तक करना पसंद नहीं करते। आखिर क्यों? देश में भ्रष्टाचार के बढ़ते किस्से ईमानदारी को पीछे छोड़ रहे हैं। जिंदगी में ईमानदारी का कोई मुकाबला नहीं। अपने पेशे के प्रति ईमानदारी तो लाजवाब है। रिश्वतखोरी तो जीवन का कलंक है। फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन एवं अमेरिका जैसे देशों में अप्रैल के अंतिम दिन 'आनेस्टी डे' मनाना समाज में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए अच्छा तरीका है। काम के प्रति ईमानदारी से व्यक्ति के व्यक्तित्व में स्वत: निखार आ जाता है। बेईमान लोगों का सामाजिक बहिष्कार एवं उन्हें 'हेय दृष्टि' से देखने से भ्रष्टाचार पर अंकुश लग सकता है। महिलाएं यदि अपनी ऐशो-आराम में कटौती कर अपनी बेकार की इच्छाओं पर नियंत्रण रख अपने पतिओं की ईमानदारीपूर्ण मेहनत की कमाई से गुजारा करें, तो रिश्वतखोरी यानी भ्रष्टाचार पर काबू पाया जा सकता है।

- प्रसाद (हैदराबाद)

दाल में काला जरूर है

संप्रग सरकार में शामिल कृषि मंत्री के पद पर विराजमान शरद पवार बार-बार विवादों के घेरे में रहे हैं, लेकिन संप्रग सरकार को उन्हें ढोना ही पड़ रहा है। पिछले वर्ष से जब से संप्रग की सरकार बनी, तब से चीनी के भाव में बेतहाशा वृद्धि हुई है। इसके लिए काफी हद तक कृषि मंत्री की गैर जिम्मेदाराना बयानबाजी जिम्मेदार रही है। आईपीएल में भागीदारी को लेकर जो तथ्य सामने आ रहे हैं, मंत्री महोदय उससे पल्ला झाड़ने की लाख कोशिश करें, लेकिन कहीं न कहीं दाल में काला जरूर है। इतना सब होने पर भी न तो प्रधानमंत्री महोदय, न ही कांग्रेस अध्यक्ष कुछ कहने या करने को तैयार हैं।

- प्रशांत (हैदराबाद)

टीआरपी बटोरने का तरीका

आजकल टीवी पर काफी रिएलिटी शो प्रसारित किये जा रहे हैं। जनता में काफी उत्सुकता है। वह कहीं न कहीं अपने आप को इन शो से जोड़ने की कोशिश करती है। कलाकारों के लिए वोट करते हैं और जीत की मनोकामना करते हैं। ऐसे में यह जानना जरूरी हो जाता है कि क्या पर्दे पर दिखाई जाने वाली चीजें सच पर आधारित हैं या सिर्फ टीआरपी बटोरने का तरीका है? निर्णायकों का आपस में लड़ना, बीच में शो छोड़ कर चले जाना, कलाकारों का बेहोश हो जाना, आपस में लड़ना, एक-दूसरे के चरित्र पर उंगली उठाना, यह सब सच नहीं लगता। सिर्फ शो चलाने के तरीके हैं। क्या यह सब सही है? क्या इससे लोगों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचती?

- उर्मिला (गोलकुण्डा)

चौबारा

नत्थू बोल्या...
- शमीम शर्मा

गर्मी के मौसम में एहसास होता है कि चौबारों का क्या महत्व है? घर की छत पर बना चौबारा एक शानदार हवादार जगह है। चार दरवाजों से युक्त होने के कारण इसे चौबारा कहते हैं। इस तरह चार बार यानी दरवाजे और कई खिड़कियां होने से यहां चारों दिशाओं से हवा और रोशनी आती है। कालान्तर में इन चौबारों के सामने बरामदे बनने से दरवाजे कम होते गए। पहले लोग गर्मी के दिनों में अक्सर छत पर ही सोया करते थे और बरसात या आंधी आने पर चौबारों में खाट खड़ी करके नीचे आकर सो जाते थे। इसके अलावा नयन-मटक्का करने के लिए चौबारे सुरक्षित एकान्त जगह रहे हैं। छत पर खड़े-खड़े अनगिनत प्रेम-कथाओं ने जन्म लिया है। चौबारों की खिड़कियों से न जाने आज तक कितने प्रेम सन्देश भेजे गए? कितनी आंखों ने दूर खड़े-खड़े इशारे किये और अपने प्रियतम के गुपचुप दर्शन भी। चौबारों से अपनी प्रेयसी को निहारने की लालसा का उल्लेख इस गाने में गज़ब तरीके से हुआ है - 'काश ऐसा होता, तेरी गली में खुलता मेरा चौबारा, चौबारे में होती खिड़की, खिड़की में झांक लेता, काश ऐसा होता।' इन्हीं चौबारों के पंखों से लटक कर हजारों प्रेम-गाथाओं के असफल नायक-नायिकाओं ने अपने इस जन्म को अलविदा कहा।

चौबारों का जिक्र लोकगीतों और फिल्मी गानों में बार-बार हुआ है। एक समय था, जब यह गाना खूब हिट हुआ था - 'आए कभी चौबारे में वो, सोचे कभी मेरे बारे में, बातें करे इशारे में वो, छत पे खड़ी है चौबारे पे वो।' प्रेमरोग फिल्म का गाना 'ये गलियां ये चौबारा, यहां आना ना दोबारा' एक लड़की के पीहर (मायका) छूटने के दर्द को इंगित करता है। चौबारों का विवाह से बहुत गहरा नाता है। जैसे ही घरों में लड़कों के विवाह की तिथि तय होती है, वैसे ही घर की छत पर चौबारे बनाने का काम भी छिड़ जाता है। मुझे एक बात का हमेशा ताज्जुब होता है कि अपने लाडलों के लिए हम चौबारे बनाने में जितनी तत्परता दिखाते हैं, उसका दसवां हिस्सा भी इस मुद्दे पर नहीं लगाते कि वे कोई काम-धन्धा भी कर लें।

00000

एक बार की बात है कि नत्थू मिलटरी मैं भरती होण चल्या (चला) गया। कद भी ठीक था अर छाती भी चाक्की के पाट की ढाल (तरह) आच्छी चौड़ी ले रह्या था। रेस भी पूरी पाड़ (कर) दी। अर ईब बारी आयी डाक्टरी मुआयने की। डाक्टर बोल्या, ''भाई कोडा(झुक)हो ज्या।'' नत्थू चुटकी लेते होये बोल्या, ''क्यूं जी धार देखोगे के?'' फेर डाक्टर बोल्या, ''खांस कै दिखा?'' नत्थू नैं खांस कै दिखाया तो डाक्टर उसकी आंख्या मैं झांकते होये बोल्या, ''सिगरेट पीते हो?'' नत्थू बोल्या, ''क्यूं जी धुम्मां (धुआं) आग्या के?''